© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2024

ऋग्वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल में समाज में स्त्रियों की स्थिति : एक तुलनात्मक अध्ययन

ममता
शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
डॉ० अंजना राव
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

सारांश

यन्त्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते है। ऋग्वैदिक सभ्यता से ही भारतीय संस्कृति में स्त्री को उच्चतम स्थान दिया गया है। ऋग्वैदिक सभ्यता से प्राप्त अवशेषों के अवलोकन यह पता चलता है कि उस समय के परिवार मातृसत्तात्मक थे और मातृ देवी की पूजा किी जाती थी। माता को जननी के रूप में पूजा जाता था। इसके बाद उत्तर वैदिक काल से ही नारी के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अधिकारों में कमी होनी शुरू हो गई। आर्थिक अधिकारों में तो स्त्रियों पहले से ही पीछे थी, परन्तु इस समय के बाद उसमें और ज्यादा गिरावट आई। ऋग्वैदिक व उत्तर वैदिक सभ्यता की पूजनीय स्त्री अब सब तरफ से कमजोर हो चुकी थी। इस काल में शुरू हुई पुरूष और स्त्रियों के जीवन स्तर की गिरावट अगली कई शताब्दियों तक निरंतर नीचे जाती रही।

प्रस्तावना

ऋग्वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में अंतर बड़ा है, जहाँ ऋग्वैदिक काल में उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था वहीं उत्तरवैदिक काल में उनकी स्थिति में गिरावट दर्ज की गयी है। ऋग्वेदिक काल का जीवन अपेक्षाकृत स्वतंत्र और स्वछंद था। सामाजिक गतिविधियों में उनके किसी भी सहभागिता पर प्रतिबंध नहीं था। वैदिक काल में स्त्री जितनी स्वतंत्र थी, परवर्ती काल में शायद वे किसी भी युग में नहीं थी। उत्तरवैदिक काल की स्थियों की स्थिति में परिवर्तन आया और उनकी दशा में अवनति के तत्व दिखाई देने लगे। उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार तो बने रहे लेकिन उनके वैयक्तिक गुणों के प्रति संदेह व्यक्त किया जाने लगा। पुरुष प्रधान समाज के कारण थियो की स्थिति दयनीय हो गयी।

स्त्रियाँ ऋग्वैदिक काल में कन्या, स्त्री और माता के रूप में प्रतिष्ठित थी। उसे पति की अर्धांगिनी और गृहस्वामिनी माना जाता था। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की दशा में काफी गिरावट दर्ज की गयी। पुत्रियों की अपेक्षा पुत्र की कामना की जाती थी। स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कार्य करती थीं, परन्तु उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ जाने से ये कार्य उनके द्वारा किये जाने लगे, समाज में स्त्रियों का महत्व कम हो गया और कन्या जन्म कष्ट का सूचक माना जाने लगा। श्री नेत्र पाण्डेय लिखते हैं कि स्त्रियों का जीवन बड़ा कलहपूर्ण हो गया था। अब कन्याओं को दुःख का कारण समझा जाता था और उनके जन्म से लोग दुखी होते थे।

ऋग्वैदिक काल में स्त्री दशा

ऋग्वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अच्छी थी। सम्मान की दृष्टि से उन्हें देखा जाता था। उनमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। स्त्री को पति की अर्धांगिनी और गृहस्वामिनी माना जाता था। उच्च शिक्षा पर उनका अधिकार था। ऋग्वैदिक काल में उसे अपना पति चुनने को स्वतंत्रता

थी। बाल विवाह, पर्दा प्रथा और सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियों को यज्ञ करने का भी अधिकार था। सामाजिक व धार्मिक उत्सवों में वे भाग लेती थीं। उत्तर वैदिक काल में उनकी यह स्वतंत्रता धीरे–धीरे क्षीण होने लगी। हालाँकि ऋग्वैदिक काल में जहाँ 'संतान के लिए' प्रार्थना की गयी है उसमे पुत्र शामिल तो है लेकिन पुत्री नहीं। इसके बावजूद भी यह नहीं माना जा सकता कि स्त्रियों को समाज में सम्मान नहीं प्राप्त था बल्कि तत्कालीन साहित्य में ऐसी बहुत सी स्त्रियों की चर्चा है जो तमाम क्रियाकलापों में शामिल होती थी। उदाहरण के तौर पर उस समय की अनेक स्त्रियों को देखा जा सकता है जो विदुषी थी, जिन्होंने ऋग्वेद और अन्य वेदों की ऋचाओं की रचना की। लोपामुद्रा, विश्ववारा, अपाला, शिक्ता, सूर्या, घोषा, रोमशा आदि विदुषियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। ये विदुषियाँ न सिर्फ शिक्षा, ज्ञान और विद्वता में अग्रणी थी, बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी ये भाग लेती थी। 'ब्रह्म यज्ञ' में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमे सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी के नाम भी शामिल हैं।

आर्य तथा अनार्य कबीलों का एक दूसरे के साथ भोजन और पशुओं को लेकर संघर्ष के माहौल में संभवतः ऋग्वैदिक स्त्रियों में अनुरक्षा की स्थिति बनी रही। शिकार से भोजन का जुगाड़ पुरुषों के समान स्त्रियों द्वारा करने के कारण उन्हें पर्दे में रहना सम्भव नहीं था। अनेक स्रोत ऐसा भी उल्लेख करते हैं की जानलेवा समस्याओं में मुकाबला करते रहने के कारण मन में पैदा डर से ध्यान हटाने के लिए और द्रविड संस्कृति से प्रभावित होकर वे मदिरापान करती, उत्सवों में भाग लेती, पुरुषों के साथ नृत्य करती थी। ऐसे कई आख्यान हैं जहाँ वे पतियों के साथ युद्ध पर जाती रही हैं। उदाहरण के तौर पर खेलब ऋषि की पत्नी विश्वलर अपने पति के साथ युद्ध क्षेत्र में गयी और मुदगलानी नामक भी शत्रुओं से लड़कर हजार गायें लाई थी। ऋग्वेदिक काल में पर्दा प्रथा का कोई ज्ञान नहीं मिलता। न ही रामायण व महाभारत में ऐसी किसी प्रथा का ज्ञान मिलता है। समाज में व्यस्क विवाह होते थे, पुत्री का विवाह के पहले भी भावी पति ने मिलना सामान्य था। विवाह के बाद वह यज्ञ में भाग लेती थी। ऋग्वेद में ऐसे संकेत हैं कि विवाह के बाद दुल्हन को बारातियों के सामने लाया जाता था। उनसे आशा की जाती थी कि वह खुलकर समाज में सबसे मुखातिब हुआ करे। अथर्ववेद में प्रेम विवाह का भी वर्णन है। इस समय स्त्रियाँ न्यायालयों में जाकर अपने संपत्ति संबंधी अधिकारों का दावा भी करती थी। सीता राम के साथ पुरुषों की वेशभूषा में ही बन गयी थी। कुंती और गांधारी ने कभी पर्दा नहीं किया। इससे सिद्ध है की महाकाव्य काल में भी पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था।

उत्तरवैदिक काल में स्त्री की गिरती हालत हमारा ध्यान आकर्षित करती है। ऋग्वैदिक काल के सन्दर्भ में डॉ० बेनी प्रसाद लिखते हैं– संघटन में सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप में स्त्री का कद ऊँचा था। किसी तरह का पर्दा नहीं था। साधारण जीवन के अलावा समाज में मानसिक और धार्मिक नेतृत्व भी स्त्रियों के हाथ में था, वह जीवन स्वेच्छा से जीती थी। धार्मिक प्रवृति की स्त्रियों को अपनी इस प्रवृति के अनुसार चलने में कोई रोक टोक नहीं थी। अनेक ऋषिकाओं की रचनाएं ऋग्वेद में भी शामिल हैं। ऋग्वेद का काल संकुचित विचारों का नहीं था। स्त्रियों के लिए समाज लचीला था। वी एन सिंह के अनुसार ऋग्वेद में विधवा विवाह के लिए भी कोई निषेध नहीं था।

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति

उत्तरवैदिक काल की स्त्रियों की स्थिति में अवनति के तत्व दिखाई देने लगते हैं। उनके सामाजिक व आर्थिक अधिकार तो बने रहे लेकिन उनके वैयक्तिक गुणों के सन्दर्भ में संदेह व्यक्त किया जाने लगा। कर्मकांड स्त्रियों की स्थिति को और दयनीय करने लगे। स्त्री व पुरुष के बीच

समानता की भावना समाप्त होने लगी। इस युग में स्त्री शिक्षा में गिरावट आती गयी, स्त्री की सामाजिक व आर्थिक स्थिति दयनीय होती गयी। कुछ स्मृतियों में उन्हें 'असत्यभाषी' तक कहा गया है। उसके यज्ञ में भाग लेने और सोम पीने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परिवार में जैसे जैसे पुरुष प्रधानता बढ़ी, स्त्री का दमन शुरू होने लगा। कन्या को दुःख का कारण घोषित किया जाने लगा। धार्मिक अवसरों में उनका भाग लेना तो आवश्यक था लेकिन अब वे सार्वजनिक सभाओं में नहीं जा सकती थी। बाल विवाह शुरू हो गया और स्त्रियों के व्यक्तिगत आचरण व आदर्श में गिरावट आने लगी। विवाह प्रथा भी अभी अपरिपक्व थी। कुंती, माद्री, द्रौपदी के उदाहरण ऐसा ही संकेत करते हैं।

वासुदेव कृष्ण की सोलह हजार पत्नियाँ कही गयी हैं। बहुपत्नीत्व और द्रौपदी के प्रसंग में बहुपतित्व दोनों प्रचलित थे। पति की सेवा न करना पाप के समान समझा जाता था। उत्तरवैदिक काल में पुरुष सत्ता पूरी तरह से प्रभावी हो चुकी थी। उत्तरवैदिक काल में सती प्रथा के आरम्भ होने के प्रमाण भी मिलते हैं। सती होने को बहुत सम्मान दिया जाता था और लगता है की यह प्रथा मात्र कुलीन वर्ग तक ही सीमित थी। देखने योग्य बात यह है कि किसी स्त्री के लिए कोई पुरुष 'सता' नहीं होता था। यह भी मात्र स्त्रियों तक ही सीमित थी। ब्राह्मण वर्ग में सती प्रथा वहुत बाद में शुरू हुई।

आठवीं सदी में उत्पादन में वृद्धि होने के कारण पुरुषों के अधिकारों में अपार बढ़ोत्तरी हुई। स्त्रियों को आयु के विभिन्न चरणों में पुरुषों के अधीन रखने की बात होने लगी। बाल्यावस्था में वह पिता के अधीन, युवा अवस्था में भाई के, दाम्पत्य जीवन में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन उसका सम्पूर्ण जीवन सिमट कर रह गया। रामायण की सीता को गर्भावस्था में भी राम ने वन में छोड़ दिया। यह घटना स्त्री स्थिति को तत्कालीन समाज में स्पष्ट करने के लिए काफी है। उत्तरवैदिक काल में विवाह संबंधी नियम अत्यधिक कठोर हो गये। सगोत्रीय विवाह को प्रतिबंधित किया गया। अथर्ववेद के अनुसार विधवा विवाह का प्रचलन था। बहुविवाह का एक ज्वलंत उदाहरण यह है की स्वयं मनु की दस पत्नियाँ थीं। कन्याओं के बेचे जाने का भी उल्लेख मिलता है। दहेज प्रथा भी प्रचलित थी। सम्पत्ति पर चूँकि पुरुष का अधिकार था, अतः वही परिवार या समाज का मुखिया था। स्त्री घर की चारदीवारी में बंद हो गयी और उसकी स्वतंत्रता खत्म हो गयी।

स्त्रियों के पतन में जाति व्यवस्था ने भी अपना योगदान दिया। जाति के बंधनों ने स्त्रियों की स्थिति में काफी गिरावट आई। परिवार व कुल की मर्यादा का भार मात्र स्त्री के कमजोर कन्धों पर था। स्त्रियों को मिलना जुलना, आवागमन आदि पर प्रतिबंध लागू हो गया। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है – पुत्री दुखों का कारण है। अथर्ववेद में स्पष्ट है– पुत्री को जन्म देने वाली मां की प्रतिष्ठा समाज में गिर जाती थी। गर्भवती स्त्री को पुत्र उत्पन्न करने के लिए औषधियां खिलाई जाती थी। डॉ० आर० एस० दास के अनुसार विवाह का उद्देश्य पुत्री की बजाय पुत्र प्रजनन था। उत्तरवैदिक काल में महिलाओं के लिए कुछ अशोभनीय शब्दों का भी प्रचलन प्राप्त होता है। वेदों में अनेक स्थानों पर उत्पादन के साधनों पर स्त्री को पुरुषों के साथ काम करते हुए वर्णित किया गया है लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं था कि उत्पादन पर उसका अधिकार था।

निष्कर्ष

ऋग्वैदिक काल में स्त्री की गरिमा का कोई मुकाबला नहीं था। वह स्वतंत्र थी और समाज में उन पर प्रतिबंध नगण्य थे। बाल विवाह और पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों अभी नहीं आई थी, स्त्री स्वच्छंद थी। वह बिना किसी प्रतिबंध के सामाजिक गतिविधियों में भाग ले सकती थी। ऊँची शिक्षा

प्राप्त करती थी और उसका उपनयन संस्कार भी होता था। कुछ स्त्रियों के रणभूमि में जाने के भी उल्लेख हैं। ऋग्वेद में पत्नी का स्थान उचा दिखाई देता है।

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आती गयी और उसकी दशा बद से बदतर होती गयी। कर्मकांडों ने उसकी स्थिति को ओर खराब कर दिया। उसे तमाम अधिकारों में वंचित कर दिया गया। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा और बहुविवाह जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन इसी काल में शुरू हुआ। स्त्री की स्थिति भोग और मनोरंजन तक सीमित हो गयी। यह स्थिति समाज में आज तक जारी है।

संदर्भ सूची

दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेद भाष्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर
डॉ० भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, ग्रन्थमाला प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 1876
शशि अवस्थी, प्राचीन भारतीय समाज, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, द्वितीय संस्करण, 1993
ए०एस० अल्तेकर, पॉजिशन ऑफ वुमैन इन हिन्द सिविलाईजेशन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, 1938
अन्विता आनन्द, गुप्त काल में नारियों की स्थिति, राधा पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 1992
श्री कृष्ण ओझा, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996
ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
जे०सी० घोष, दी प्रिंसिपल्स ऑफ दी हिन्दू लॉ, गेल मेकिंग ऑफ मॉर्डन लॉ, 2013
जगदीश चन्द्र जैन, जैन अगम साहित्य में भारतीय समाज, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1965
विमल चन्द्र पाण्डेय, भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास, हिन्दुस्तान एकेडमी, उत्तर प्रदेश, 1960
विंटर नित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2010
इरफान हबीब और विजय कुमार ठाकुर, वैदिक काल, नयी दिल्ली, डायमंड प्रकाशन, 2015
डॉ० एस० एन० नागोरी, प्राचीन भारतीय चिंतन का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1992
राजबली पाण्डेय, अथर्ववेद, डायमंड पप्लिकेशन, दिल्ली, 2015
ओमप्रकाश प्रसाद और प्रशांत गौरव, नारीवाद, रावत प्रकाशन, जयपुर, 2011
रहीम सिंह, प्राचीन भारतः प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक, डार्लिंग किंडरमले, नई दिल्ली, 2012
बी० एन० सिंह और जन्मेजय सिंह, नारीवाद, रावत पब्लिकेशन्स्, जयपुर, 2012
डॉ० शिवस्वरूप सहाय, प्राचीन भारत का सामाजिक व आर्थिक इतिहास, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, जयपुर, 2004